संत कवि रज्जब के काव्य में शिल्पी जीवन सम्बन्धी रूपक

डॉ. शगुफ़्ता नियाज़
असि.प्रो. हिंदी विभाग
वीमेंस कालेज, ए.एम.यू. अलीगढ़ 202002

संत कवि रज्जब ग्रामीण जीवन से जुड़े थे । वे एक ऐसे संत थे जो समाज में क्रान्ति लाना चाहते थे । समाज के अन्दरूनी हलकों में उनकी पैठ थी, इसलिए वे अपने लौकिक व आध्यात्मिक जीवन में समन्वय करके चले हैं वह अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि को कर्मक्षेत्र के बीच में ही देखते हैं । उनके काव्य में लोक जीवन, उनकी आध्यात्मिक अनुभूति का सशक्त माध्यम बनकर खड़ा हुआ है । उनकी साधना आसपास के जीवन को समेट कर चली है । उनका काव्य लोक उपादानों को स्वीकारता है और ये उपादान रूपक के रूप में हमारे सामने आते हैं जो सहज सामान्य से लिए गए हैं । इन रूपकों के माध्यम से संत कवि रज्जब ने सशक्त भावों की अभिव्यक्ति की है और इसकी पुष्टि के लिए वह दूर न जाकर आसपास के परिवेश से उपादान ग्रहण कर अपनी बात बेधड़क सामने रख देते हैं ।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाजिक अर्थव्यवस्था का सहगामी वहाँ का शिल्पी जीवन भी था । कुम्हार, लुहार, बाजीगर कलाल आदि ग्रामीण शिल्पी व्यवसाय के अंग में शिल्प प्रतिभा को उन्होंने निकट से देखा था । शिल्प चेतना के साथ किसी भी शिल्पी की बारीकियाँ शिल्पकार के मानस के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं । वे चिन्तन व अनुभूति का अंग बन जाती हैं । ऐसी अवस्था में कवि मानस और अधिक सचेत और सक्रिय हो उठता है वह हर कार्य व्यापार में अपनी अनुभूति के दर्शन करने लगता है और उसकी रचना प्रक्रिया में शिल्प की बारीक प्रक्रियाएँ, उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती जाती हैं । उन्होंने अपने युग में ग्रामीण शिल्पी व्यवसाय की बारीक प्रक्रियाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए उन्हें अपने चिन्तन और अनुभूति का आधार बनाया । उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं को इसी शिल्प चेतना और विभिन्न शिल्पी व्यवसाय की बारीक

प्रक्रियाओं को रूपक का आधार देकर अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

वयनशिल्प (बुनकर) शिल्प से सम्बन्धित रूपक

मध्यकाल में वयन व्यवसाय जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से जुड़ा हुआ था। उन्होंने इस व्यवसाय से समबन्धित सभी उपादानों को काव्य चेतना का माध्यम बनाया है।

बुनकर शिल्प में सूत मूल आधार है। कच्चे सूत और सूत का उलझना व सुलझाना सभी को जीवन साधना से जोड़ते हुए आध्यात्मिक यात्रा संत कवि रज्जब जी ने की है।

कच्चे सूत से सम्बन्धित रूपक

वयन व्यवसाय में सूत वस्त्र का उपादान कारण है। इसमें तत्कालीन न्याय की अवधारणा को इस कच्चे सूत से जोड़ कर उन्होंने गम्भीर बात कही है -

रज्ज्ब काचा सूत षिष लिपटाया सतगुरु हाथ।
काल कसौटी देय दिव्य, जले न साँचे साथ।।1

पूर्वकाल में न्याय की एक अलग परम्परा थी। कच्चा सूत हथेली पर लपेटकर उस पर दिव्य रखा जाता था। अर्थात् न्यायालय की सत्यासत्य परीक्षार्थ हाथ पर रखा जाने वाला लोहे का गोला होता था। ये परीक्षा सच व झूठ को जानने के लिए की जाती थी। सच्चे का हाथ नहीं जलता था झूठे का जल जाता था। इसी तथ्य को संत कवि रज्जब गरु और सच्चे सद्गुरु से जोड़ते हैं कि सच्चे सद्गुरु के संग रहने से शिष्य काल दंड रूप परीक्षा से व्यथित नहीं होता। जैसे मोर के पंखों में यदि कच्च तार बंधा हो तो वह अग्नि में नहीं जलता वैसे ही महापुरुष सद्गुरु की शरण में जाने पर शिष्य भी कालाग्नि में नहीं जलता।

सूत से सम्बन्धित रूपक

बुनकर शिल्प में सूत एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। संत कवि रज्जब ने उसके अनेक रूप अपने रूपकों में उठाए हैं।

सूत की विशेषताओं को मन की दुर्भावनाओं और सद्भावनाओं से जोड़ते हुए उन्होंने एक नया रूपक रच दिया -

सांचा सूत सो कणि कट, साधू जन सुत धार।
रज्जब काढ़ौ बंक बल, तामै फेर न सार।।2

सत्य सूत के समान है और झूठ काठ के समान है, साधू सत्य रूपी सूत को धारण करता है जैसे बुनकर बाकपन, बल, कटक और कमियों आदि दोषों को निकाल देता है वैसे ही संत भी माया, मोह, लोभ, स्वार्थ, परनिन्दा आदि दोषों को निकाल कर सत्य रूपी सूत धारण करते हैं।

मानव जीवन में कर्मजाल भी वयन व्यवसाय के सूत संयोजन से अद्भुत साम्य रखता है। सूत का उलझना व सुलझना अर्थात् कर्मजाल में लिप्त होना व उससे निवृति आदि सन्दर्भों की व्याख्या संत कवि रज्जब ने इस रूपक में की है।

सांसारिक मायाजाल को उलझे हुए फंदे की भांति मानते हुए उन्होंने उससे बचने की सलाह दी है।

जीव पड़या यूं गुणहुं में, ज्यों गोरख धंधा।
जन रज्जब कोड कोटि में, सुरझावे फंदा।।3

बुनकर उलझे हुए सूत को बहुत ध्यान से सुलझाते हैं, वैसे ही जीव गुणों (सांसारिक माया) में उलझा पड़ा है। इस गोरख धंधे से कोई बुद्धिमान साधक ही निकाल पाता है अर्थात् सुलझाता है। जीवात्मा बुरी तरह इन फंदों में उलझी हुई है उसे निकालने के लिए कोई सद्गुरु रूपी बुनकर ही चाहिए।

संत कवि रज्जब ने बुनकर शिल्प के रूपकों में गूढ़ गम्भीर आध्यात्मिक अभिव्यंजनाएं करते है। प्रभु प्रेम सूत कभी उलझना नहीं चाहिए। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सूत में माड़ी लगाना चाहिए। वासनामय मन रूपी मैदे के साधना द्वारा पीसकर ज्ञान रूपी छलनी से छानकर प्रेम रूप तेल डालकर जो भक्ति रूप वस्त्र तैयार होगा वह प्रभु के दरबार में सहज ही स्वीकार्य होगा।

इसके अतिरिक्त भी अन्य शिल्पों में संत कवि रज्जब की गहरी पैठ थी। यथा- कुम्हार या कुम्भकार द्वारा शिल्प द्वारा भी उन्होंने आध्यात्मिक रहस्य खोले हैं।

कुम्हार शिल्प से सम्बन्धित रूपक

कुम्हार शिल्प से हम सभी भलिभांति परिचित हैं। कुम्हार गुरु ब्रह्म के सृजनकर्ता स्वरूप को प्रस्तुत करता है। शिल्पी जीवन में कुम्हार या कुम्भकार कर्म की रचनाधर्मिता सृष्टि के स्वरूप की सुन्दर व्यंजना करती है। कुम्भकार मिट्टी के पात्र बनाने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का सहारा लेता हुआ सामान्य मिट्टी से उसे विभिन्न पात्रों का स्वरूप प्रदान करता है, सृष्टि रचना में जीव (मनुष्य) को भी जीवन के विभिन्न संदर्भों में अपनी पात्रता का स्वरूप ग्रहण करने के लिए भी संत कवि जीवन क्रम को उस परमसत्ता की निर्मिति के रूप में देखते है। संतों की धारणा है कि जीव का सामान्य स्वरूप मिट्टी की तरह होता है। परमसत्ता की इच्छा से जीवन की विभिन्न भूमिकाओं के द्वारा अपरिपक्व शरीर और आध्यात्म साधना की अग्नि में परिपक्व होकर आध्यात्मिक पात्रता का स्वरूप ग्रहण करता है। संत कवि रज्जब जी ने जीवन साधना की कुम्भकार द्वारा पात्र निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं के रूप में अभिव्यक्त किया है। इसके लिए उन्होंने रूपकों को माध्यम बनाया है। इन रूपकों में कुम्भकार शिल्प की विभिन्न प्रक्रियाएँ सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई है कि उनसे एक ओर जहाँ कुम्भकार शिल्प की प्रक्रियाओं का स्वरूप प्रस्तुत होता है वहीं उनसे आध्यात्मिक जीवन साधना की प्रक्रिया की व्यंजना भी होती है।

कुम्भकार शिल्प की प्रथम अवस्था मिट्टी तैयार करने की है। पात्र निर्माण इसके बिना नहीं, संत कवि रज्जब जी ने शरीर शोधन व मन शोधन की अवस्था से मिट्टी तैयार करने की प्रक्रिया को जोड़ा है।

मिट्टी निर्माण की प्रक्रिया से सम्बन्धित रूपक

जिस प्रकार मिट्टी को आकार ग्रहण करने के लिए कुम्हार द्वारा रौंदना आदि क्रियाएँ सहनी पड़ती हैं वैसे ही जीव को संसार में रूप ग्रहण करने में गुरु द्वारा अनेक ताड़नाएँ सहनी पड़ती है। मिट्टी के लिए कुम्हार की मार जैसे आवश्यक है, शिल्प के लिए गुरू की डाँट, ताड़ना भी उसी

प्रकार आवश्यक है। कुम्हार की तरह गुरु की ताड़ना बहुत हितकर होती है। प्रस्तुत रूपक में इसी तथ्य को लिया है -

मार भली जे सतगुर देई।
फेरि बदल और करि लेइ।
ज्यूँ माटी सिरि करै कुम्हार, त्यूँ सतगुर की मार विचार।
X X X
ज्यूँ कपड़ा दरजी के जाइ जाइ, टूक टूक कर लेह बणाइ।
ज्यूँ रज्जब सतगुर का खेल ताते समझि मार सब झेल।।4

संत कवि रज्जब जी का कहना है कि गुरू की ताड़ना बहुत हितकर है। जिस पर कुम्हार का मिट्टी को कुटना.पीटना हितकर है। इस चोट द्वारा कुम्हार मिट्टी को पात्र बनाने के योग्य बनाता है, परन्तु गुरु की ताड़ना शिष्य को उसकी निम्न अवस्था से उच्चतर की ओर ले जाती है। कुम्हार मिट्टी को पूजने योग्य बना देता है। मूर्ति आदि रूपों में गढ़कर वैसे ही गुरु-शिष्य को ताड़ना देता है तो केवल ऊपर से की ताड़ना दे रहा होता है अन्दर से शिष्य का हित करना ही अभीष्ट होता है। अर्थात उसे ईश्वर के समीप लाना श्रेष्ठ बनाना ही गुरु रूपी कुम्हार का अभीष्ट होता है। गुणों से सुन्दर कलश को जिन कठोर प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, उसका साम्य शिष्य और गुरु के संदर्भ में बहुत ही सार्थक रूप में कवि ने किया है –

सेवक कुंभ कुभार गुरु, धड़ धड़ काढ़े खोट।
रज्जब मांहि सहाय कर, तब बाहर दे चोट।।[5]

गुरु कुम्हार और शिष्य घड़े के सदृश्य हैं, जैसे कुम्हार एक हाथ पात्र के ऊपर और एक हाथ अन्दर रख कर उसे चोट देता हुआ घुमाता है वैसे ही शिष्य को भी गुरु द्वारा अनेक साध्य परीक्षाओं से गुजारना पड़ता है और उसे निर्दोष या दोष रहित रूप प्रदान करता है।

पक्के घड़े से सम्बन्धित रूपक

श्रेष्ठ प्राणी और हीन प्राणी की पहचान को संत कवि रज्जब ने साबुत घड़े और फूटे घड़े से समता करते हुए यह सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है -

रज्जब काया कुम्भ कौ, परखे पान प्रवीन।
सारे का सारा सबद, फूटा वाणी हीन।।[6]

घड़े की परख के लिए उसकी आवाज़ को ठोक बजा कर पारखी देखता है। साबुत घड़े की आवाज़ अलग होती है और फूटे घड़े की आवाज़ अलग होती है। इसी प्रकार इस संसार में श्रेष्ठ प्राणी की वाणी मधुर कोमल कल्याणकारी स्वार्थ रहित होती है और हीन प्राणी की वाणी कर्कश, दुख देने वाली, स्वार्थी और अमंगलकारी वाली होती है। इसकी पहचान प्रत्येक सुधी जीव को आनी चाहिए।

एक ही कुम्हार द्वारा निर्मित विविध प्रकार के बर्तनों में उसकी आत्मा या कला विद्यमान है। उसी प्रकार ब्रह्म की कला प्रत्येक मानव में समान रूप से वर्तमान है। कुम्भकार की शिल्पी प्रक्रिया से सृष्टि निर्माण को जोड़ते हुए संत कवि रज्जब जी ने अनूठी काव्य रचना की है।

बर्तन बनाने की प्रक्रिया से सम्बन्धित रूपक

कुम्हार शिल्प की भाँति जीवन रूपी चाक पर भी हम जीव किस प्रकार चढ़ते हैं और उसे इस योग्य बनाते है कि ईश्वर को प्रसन्न कर पाएं इस तथ्य को उठाते हुए संत कवि रज्जब जी ने ये रूपक सहज ही रच दिया -

तन मन माटी पीटि करि, कोइ एक घड़ै कुंभार।
जन रज्जब टूटे बिना, कुंभ न होइ गंवार।।[7]

मिट्टी को पीट कर, कूट कर कुम्हार महीन करता है, उसमें से सारी रोड़ी निकाल उसे कोमल रोड़ी रहित बनाता है तब कुम्भ का निर्माण होता है। उसी प्रकार तन.मनादि को साधन द्वारा कूटे बिना कोई जीव भी मुक्ति नहीं पा सकता और संसार रूपी आवगमन के चक्रों से मुक्ति के लिए तन.मन को ईश्वरीय याद में ही रखना पड़ेगा। जीव का महीन या बारीक मिट्टी की तरह इसी भाव में निहित है कि वह संसार में रहते हुए भी संसार से कितना कष्ट कर ईश्वर में मन रमा सकता है।

जड़ बासण जड़ गहया, रीता रहै न सोय।
कुंभ कुम्हार कमाऊ दुन्यूं, सो पूरण किन होइ।।[8]

मूर्ख कुम्हार द्वारा निर्मित मिट्टी का बर्तन जड़ होता है वह भी खाली नहीं रहता अर्थात् भर कर काम में आता है। फिर हमारे शरीर रूप कुंभ को बनाने वाला ईश्वर रूपी कुम्हार और कुंभ रूपी जीव दोनों ही अद्वितीय हैं तो जीव रूपी कुंभ अवश्य ही भरा रहेगा।

गुरु ज्ञाता परजापती, सेवक माँटी रूप।
रज्जब रज सौं फेरी कर, धड़ले कुँभ अनूप।।[9]

शिष्य मिट्टी के समान और ज्ञानी गुरु कुम्हार सदृश्य है। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी को कूट कर उसमें से एक एक रोड़ा निकाल उसे चिकना कर बर्तन बनाने योग्य बना लेता है उसी प्रकार गुरु अपने शिष्य में ईष्र्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा आदि अनेक विकारों रूपी रोड़े को निकाल कर उसकी आत्मा को विकार रहित बना लेता है। इस प्रकार कुम्हार सुंदर कलश तैयार करता है और ज्ञानी गुरु साधारण प्राणी को श्रेष्ठ संत के गुणों से युक्त बना देता है।

कुम्भकार रूपी ब्रह्म ने एक ही चाक पर सारे जगत का निर्माण किया है, जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के बर्तन एक ही चाक पर बनकर उतरते हैं उसी प्रकार सभी जीवों में एक ही ज्योति समान रूप से व्याप्त है, केवल भौतिक शरीर के द्वारा नाम रूप का भेद है।

कुम्हार लोक जीवन में बहुत पहले से ही अपना एक विशेष स्थान बनाए हुए थे। मिट्टी के बर्तनों की उपयोगिता समाज के लिए अनिवार्य सी वस्तु थी। आज के ग्रामीण जीवन में भी वह उतना ही महत्व रखता है। संत कवि रज्जब ने अपने चारों ओर के समाज में कुम्हार के इस वैशिष्ट्य को देखा था। अतएवं उनकी रचनाओं में उनका उल्लेख स्वभाविक ही है। उन्होंने सृष्टिकर्ता और सृष्टि निर्माण के लिए कुम्हार शिल्प से रूपक उठाकर अपनी आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों को जीवंतता प्रदान की है।

जौहरी की व्यवसाय कला (शिल्प) से सम्बन्धित रूपक

काव्य में रूपक चेतना कवि को जीवन के किन-किन संदर्भों से जोड़ती है यह कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति पर निर्भर करती है और कवि अपने आस.पास के परिवेश, भाव-विचार, सरकार की अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से देखता है और उससे अपने रूपकों की संरचना करता है। यद्यति संत

कवि रज्जब निम्न वर्गीय शिल्प से जुड़े थे लेकिन उन्होंने केवल निम्न वर्ग को ही अपनी रूपक चंतना का विषय नहीं बनाया, वह सामाजिक व्यवसाय की हर कला को शिल्प के रूप में लेकर रूपकों का निर्माण करते हैं। जौहरी इसी प्रकार का एक व्यवसाय है। जवाहरात या बहुमूल्य रत्नों के व्यवसायियों को जौहरी कहा जाता है। उनके गुण में मोतियों व बहुमूल्य रत्नों का व्यवसाय उन्नत स्थिति में था और जौहरियों की इस दृष्टि में बहुत प्रतिष्ठा थी और आज भी जौहरी शिल्प उतना ही महत्वपूर्ण है।

जौहरी शिल्प उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना हीरा बहुमूल्य धातु है, उसे साधारण व्यक्ति नहीं खरीद सकते, उसके लिए बहुत दिनों तक धन एकत्र किया जाए तब खरीद पाना सम्भव हो पाता है ठीक उसी प्रकार व्यक्ति भी अत्यन्त बहुमूल्य और हीरे के व्यापार के समान है जिसके लिए बहुत अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। यह मूल्य एक अक्षुण्य साधना है जिसमें स्वयं को गलाकर जीव प्रकाशमान अमूल्य भक्ति रूपी हीरा खरीदता है। 'हीरा' उपादान को लेकर संत कवि रज्जब ने गूढ़ आध्यात्मिक अभिव्यंजना की है।

पारस पत्थर से सम्बन्धित रूपक

जौहरी शिल्प का एक महत्वपूर्ण उपादान है। पारस पत्थर जिसकी विशेषता से हम सभी परिचित हैं कि वह लकड़ी के साथ भी रखा जाए तो यह कुछ समय बाद पारस पत्थर की विशेषताएँ ले लेता है। संत कवि रज्जब ने निम्नलिखित रूपक में संत को पारस पत्थर के रूप में प्रस्तुत किया है -

पारस परसत लोह, सौंधे सौं महँगा भया।
तो क्यों न करीजे मोह, रज्जब सांचे साधु सौं।।[10]

लोहा पारस से मिलते ही मूल्यवान हो जाता है वैसे ही सन्तों की संगति में जीव की आध्यात्मिक उन्नति होती है, इसलिए सन्तों के संसर्ग में अदृश्य रहना चाहिए। साधारण मनुष्य के सम्पर्क में हममें कुछ गुण ही आएंगे जौसे लोभ, मोह, तृष्णा, माया, निन्दा, परन्तु संत सब से परे है। अब सदैव उनकी संगति करनी चाहिए कुछ समय बाद पारस पत्थर की भाँति उनकी विशेषताएँ हम में समाहित होने लगती हैं।

इस प्रकार संत कवि रज्जब की बानियों में जौहरी गुरु भवन ज्ञान, साधक एवं भक्त के रूप में ग्रहण किया है। हीरे को आत्म तत्व के रूप में, जौहरी शिल्प से जुड़े उपादान मोती पारस पत्थर जैसे रूपकों का प्रयोग कर आध्यात्म के नए रास्ते सर्वसाधारण को दिखाए हैं।

लोहार शिल्प से सम्बन्धित रूपक

संत कवि रज्जब ने लोहार शिल्प को भी बारीकी से देखा था। लोहार 'लोहे' के एक टुकड़े को लेकर तपाता, गलाता, पीटता है व अन्त में गर्म करके अपने अनुसार ढ़ाल लेता है। लोहार शिल्प में लोहा रूपक की संरचना करते हुए अपनी आध्यत्मिक अनुभूतियों का स्वर दिया है।

निहाई से सम्बन्धित रूपक

संत कवि रज्जब ने लौह को जीवात्मा व हथौड़े को सांसारिक के रूप में लेते हुए ये बताने का प्रयास किया है कि एकमात्र परमसत्ता की सत्य है। इसके आश्रय में ही इस जीवन की सार्थकता है। परसत्ता के आश्रय के बिना जीव उसी प्रकार चोट खाता रहेगा जिस प्रकार तिहाई पर रखे हुए लौह पर भारी हथौड़े की निरन्तर चोटें पड़ती है। निरन्तर चोटें मिलने के बाद लोहे की भांति जीव सन्मार्ग पर चल पड़ता है।

लुहार कर्म की प्रक्रिया द्वारा गुरु शिष्य सम्बन्ध की ये व्याख्या निःसन्देह वर्तमान में भी उपयोगी है जबकि छात्रों को दण्ड देने का कार्य शिक्षण संस्थाओं में आज निषेध है। ऐसे समय में यह एक रूपक बड़ी सीख देता है -

सतगुरु संक्या ना करै, जैसे लोहि लुहार।
रज्जब मारै मिहरि करि, ताइ करै ततसार।।[11]

सतगुरु को लोहार के समान बताते हुए संत कवि रज्जब जी कहते हैं कि लुहार लोहे पर मारते समय यह शंका नहीं करता कि यह नष्ट हो जाएगा बल्कि लोहे को उपयोगी रूप देने के लिए तथा तपा कर श्रेष्ट बना देता है। गुरू भी शिष्य को आत्म संयम, मौन और सांसारिक माया मोह से दूर रहने जैसी कठिन साधनाएँ बताते हुए और उन्हें अपने शिष्य को कष्ट देना इसका अभिप्राय नहीं होता बल्कि ज्ञानाग्नि से तपा कर ब्रह्मनिष्ठा बनाना ही एक मात्र अभिप्राय होता है।

इसी प्रकार एक अन्य रूपक में भी संत कवि रज्जब जी ने इसी गुरु शिष्य सन्दर्भ को प्रस्तुत किया है -

कालबूत कसणी भई, सवब साठी जाणि।

रज्जब तावै तरीगर, त्यों सदगुर की बाणि।।[12]

लुहार तीर बनाने के लिए लोहे को श्लाका को तीर के साँचे में डाल कर इतना तपाता है कि वह लक्ष्य भेदने योग्य हो जाए। तब बाण की सार्थकता है। उसी प्रकार सद्गुरु भी अपने शिष्य को साधन कष्ट द्वारा तपा.तपा कर उसे ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बना देता है।

ज्ञानी गुरु रूप लोहार शरीर के अवयवों को किस प्रकार प्रयोग कर ईश्वरीय कृपा में लगाए इस गूढ़ तथ्य को भी संत कवि रज्जब अत्यन्त सहज रूप में प्रस्तुत कर देते हैं -

रज्जब धवणि लोहार की, त्यों स्वर नासिक दोय।

भजन बिमुख पाव पवन, देखै दहेम सु होइ।[13]

नासिका से निकलने वाली स्वर ध्वनियाँ लुहार की धौंकनी की भांति है जैसे लोहार की धौंकनी अग्नि जलाकर कोयला आदि को भस्म कर देती है वैसे ही नासिका का श्वास भगवद् भजन या ईश्वरीय याद से दूर रहने वाले प्राणियों की आयु समाप्त करके नष्ट कर देती है और यदि इसी श्वास को ईश्वर में रमा देता, प्राणी जीवन रक्षा करता हुआ मोक्ष तक पहुँच जाता है।

संत कवि रज्जब ने कर्माग्नि के लिए लुहार की भट्ठी, लोहा, करूणी आदि के द्वारा जीव को सत्यमार्ग दिखाते हैं। लोहार को जिस प्रकार अपने उद्योग के लिए भट्ठी, कोयला धौंकनी, निहाई, हथौड़ा, फुंकनी व जल की आवश्यकता होती है। उन्होंने इस समस्त उपादानों का प्रयोग अपने उपरोक्त रूपकों में सफलतापूर्वक किया है|

रजक (धोबी) व्यवसाय से सम्बन्धित रूपक

समाज में रजक का व्यवसाय सामान्यतः शिल्प के अन्तर्गत नहीं आता। शिल्प रचनात्मक चेतना से युक्त होती हैं। रजक व्यवसाय प्रत्यक्ष रूप से रचनात्मक चेतना से जुड़ा नहीं है लेकिन इस व्यवसाय को कला से अलग भी नहीं किया जा सकता। रजक की कपड़ों को धुलाई के माध्यम

से मैल विहीन करके एक नवीन रूप देता है। वस्त्र प्रक्षालन की चेतना आध्यात्मिक सन्दर्भ में आत्म.शोधन और शरीर-शोधन की चेतना के साथ सदृश्य तो रखती ही है। इस व्यवसाय का परिवेश भी कृषक और शिल्पी व्यवसाय के समाज का अंग होने के कारण संत कवि रज्जब के परिवेश के अत्यन्त निकट था। अतः उन्होंने रजक व्यवसाय की चेतना को पहचाना और इसे कला के रूप में पहचानते हुए आध्यात्मिक सन्दर्भ में अपने रूपकों का माध्यम बनाया -

इन्द्री अनंग अंगार है, काया कपड़ै माहिं।
बप वस्तर बाबै बचैं, नहीं त ऊवौ नाहिं।।[14]

वह शरीर रूपी काया धोबी के वस्त्र के समान है जिसमें काम अग्नि और अंगार भरे हैं। इस वस्त्र को धोबी रूपी गुरु जब जल डालेगा तभी यह शांत होगी। इसके बिना यह सम्भव नहीं।

ज्ञानी गुरु रूपी धोबी का प्रत्येक जीव को मिलना अति आवश्यक है। संत कवि रज्जब जी ने ज्ञानी के वचनों की मार को धोबी की मार के समान माना है। संत नाम के दयिा में गुरु रूपी धोबी जब डुबा-डुबाकर धोएगा तभी जीव स्वच्छ हो पाएगा।

इस तथ्य को संत कवि रज्जब जी समझ गए हैं और गुरु रूपी धोबी से उनकी प्रार्थना है कि -

तन मन कौ धौवे, बुधि के विविध विकार।
रज्जब की रज ऊतरै, तुमतैं रिसजनहार।।[15]

सृष्टिकर्ता रूपी धोबी को सम्बोधित करते हुए संत कवि रज्जब जी कहते है कि - हे स्वामी मेरे तन-मन को धोकर उज्ज्वल कीजिए। बुद्धि के विविध प्रकार के विकारों को नष्ट कीजिए। मेरे ऊपर सुविधा रूपी गन्दगी का जो आवरण चढ़ा है। वह आपकी अर्थात् ईश्वर रूपी धोबी की धुलाई से ही उतरेगा।

बाज़ीगर से सम्बन्धित रूपक

बाज़ीगर दर्शक को भुलावे में डाल कर अवास्तविक में सत्य की प्रतीत करा देता है। गाँव में आज भी इस तरह का खेल तमाशा दिखाने के लिए एक प्रकार का वाद्ययंत्र बजाया जाता है जिसे सुनकर लोग तमाशा देखने

के लिए इकट्ठे हो जाते है। इस भाव की व्यंजना उन्होंने सृष्टि लीला के सन्दर्भ में निम्नलिखित रूपक में की है। संसार के लिए बाज़ी की परमसत्ता के लिए बाज़ीगर उपनाम ग्रहण करते हुए संत कवि रज्जब ने अनेक रूपक रचे हैं जिसमें उन्होंने परमसत्ता रूपी बाज़ीगरी के रहस्य को जनसाधारण को बताया है

गात गोठि के रूप है, बाज़ीगर निजनाथ।
बषेरि मेलतौं बेरि क्या, ये सब उनके हाथ।।[16]

ईश्वरीय बाज़ीगरी के समान है जिस प्रकार बाज़ीगरी बहुत सारे गोले फैला देता है फिर मिला देता है, कुछ छिपाता है, कुछ दिखाता अर्थात् अनेक प्रयोग गोलों से करता है, वैसे ही ईष्वरीय रूपी बाज़ीगर ने भी अनेक जीव रूपी गोले संसार में भेजे हैं जब जैसा चाहता है उनसे काम लेता है और कुछ गोलों अर्थात शरीर को अपने पा बुलाता है कुछ नए फिर भेज देता है। सारी सृष्टि प्रक्रिया का रहस्य ईश्वर स्वयं ही जानता है जैसे बाज़ीगर के करतबों के इसके सिवा और कोई नहीं जानता।

बाज़ीगर परमसत्ता का स्वरूप अविनाशी है। वह पंचतत्व वाला शरीर नहीं है। जैसे आकाश में बादल है वैसे ही निर्विकार ब्रह्म के बादलों के समान अपार अवतार हुए है और जैसे बादल आकाश में लय हो जाते है वैसे ही अवतार ब्रह्म में लय हो जाते हैं। बाज़ीगर जैसे बहुरूपिया भी होता है अनेक रूप धारता है ऐसे ही एक ब्रह्म रूप बाज़ीगर को भी अनेक रूपों में भोले लोगों ने देखा है। जबकि इस वास्तविकता को हम जानते हैं कि ब्रह्म एक ही है।

नटकला से सम्बन्धित रूपक

बाज़ीगर की तरह लोक जीवन में नर.नारी का नाम प्रमुख है। ये विभिन्न प्रकार के वाद्य संगीतों के ज्ञाता होते थे और बाँस रस्सी के सहारे अपनी का प्रदर्शन द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। उन्होंने 'नट को योगी सिद्धों के रूप में लिया है।

नट अपने उदर पूर्ति के लिए बहुत सारे खेल, करतब, अजूबे दिखाता है जिसमें साधारण जनता समझ नहीं सकती और ताली बजाकर उस नट को धन देती है। संत कवि रज्जब जी ने ईश्वर को नट की संज्ञा दी है कि

ईश्वर रूपी नट भी चन्द्र, सूर्य, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश आदि के द्वारा उनके क्रिया-कलापों द्वारा हम सब को चकित कर देता है, हम सभी उसका मर्म भी जानना चाहते हैं परन्तु हमारे हाथ कुछ लगता नहीं है। अतः अन्त में हम उस परमेश्वर रूपी नट के आगे नतमस्तक हो जाते हैं।

नट अपने तमाशे से अज्ञानियों को भ्रम में डाल देते हैं। सांसारिक माया के खेल को संत कवि रज्जब ने नट की कला कहा है और इस शिल्प के माध्यम से अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना की है -

यह सब बाजी नट्ट की, करि खेल्या षट अंग।
रज्जब मानी जगत जड़, सुतन कहै पित भंग।।[17]

ब्रह्म रूपी नट विविध व्यापारों द्वारा अपनी सत्ता सिद्ध करके नट के वेश में नृत्य करता है, नट अपनी कला से बाँस के तन्तुओं पर नृत्य करता हुआ दिखाई देता है किन्तु वह वस्तुतः सत्य नहीं है, कला मात्र है, केवल विवकेशील प्राणी ही इस तथ्य को समझ सकता है।

एक गये नट नाच करि, एक कछे अब आइ।
जन रज्जब एक आइये, बाजी रची खुदाइ।।[18]

नाट्यशाला में एक नर आता है, नाचता है, स्वांग रचता है और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। ठीक उसी प्रकार बाजीगर रूपी ईश्वर ने संसार.माया रूपी बाजी रची है इसमें एक जन्म लेकर मर रहा है और एक जन्म ले रहा है आगे भी जन्म होते रहे। जैसे वृक्ष में से एक पत्ता उत्पन्न होता है और एक गिर जाता है वैसे ही इस माया रूप संसार में एक शरीर जन्मता है, एक मरता है किन्तु दसों दिशाओं में यह संसार रूपी माया मनुष्यों से परिपूर्ण है, खाली कभी नहीं होती। ऐसी बाजी ईश्वर रूपी बाजीगर ने रची है।

नटनी की एकाग्रता से चित्त का रूपक बांधा है जिस प्रकार नटनी अपने तन.मन और चित्त को बाँधकर अर्थात् स्थिर बहुत लोगों के देखने की परवाह करे बिना रस्सों पर चढ़ जाती है और उसकी नेत्र वृत्ति दसों दिशाओं को न देखकर केवल स्वाभाविक रस्से में ही समायी रहती है।

गुरु मुख से निकले हुए उपदेश नट के भाला झेलने के समान है और आत्म उपज अच्छी खांड वाले का डिल्ला के समान है, वह मच्छी के

उछाल को झेलता है। गुरु मुख के उपदेश द्वारा मनुष्य बहुत गहरे पानी तक तैर सकता है।

कलाल शिल्प से सम्बन्धित रूपक

मदिरा बनाने वाले को कलाल कहा जाता है। मदिरा का बनाना व उसका पान करना दोनों ही निकृष्ट कार्यों में आते हैं। संत कवि रज्जब ने इस तुच्छ समझे जाने वाले कर्म को भी उसकी आध्यात्मिक भावभूमि का आधार बनाया है। प्रस्तुत रूपक के माध्यम से उन्होंने कलाल शिल्प के आदान को ईश्वरीय अनुभूतियाँ प्रस्तुत की है –

राम रस पीजिये रे, पीये सब सुख होय।
पीवत ही पातक कटैं, सब संतन दिशि जोय।
निशि दिन सुमिरण कीजिये, तन मन प्राण समोय।
जन्म सफल सांई मिलै, जिव जएि साध हु दोय।
सफल पंतित पावन कियै, जो लगे लै लोय।
अति उज्जवल अध ऊतरै, किलविष राले धोय।
इहिं रस रसिया सब सुखी, दुखी न सुनिये काय।
जब रज्जब रस पीजिये, संतों पीया सोय।[19]

राम भक्ति रस को पीने से उसी प्रकार आनन्द आता है जैसे कलाल द्वारा निर्मित मदिरा से आता है। राम रस पान से समस्त पाप समाप्त हो जाते है। यह सुमिरन सभी दोषों को धो डालता है। इस रस को पीने वाले सभी संत सुखी है कोई दुखी नहीं है। कलाल रूपी मदिरा पान से मनुष्य बेसुध होकर दुनिया भूल आनंदित हो जाता है चाहे कुछ क्षणों का ही हो उसे बार-बार पीना चाहता है। भक्ति रूपी रस उस मदिरा से अधिक पवित्र व श्रेष्ठ है उस रस को पीने के बाद सांसारिक आवागमन से संत मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार उनका काव्य एक अद्भूत एवं अनोखे ढ़ंग से अनुभूति (विचार) को मुखरित करती है। संत कवि रज्जब के काव्य में रूपकों के माध्यम से साकारात्मक सत्य की अवतारणा की गई है। भावनाओं और विचारधाराओं को प्रकट करने में

प्रायः जनवाणी के साथ अन्य साधनों का भी आश्रम संत कवि रज्जब जी ने लिया है। उन्होंने अपने काव्य में तत्कालीन जनजीवन में प्रचलित व्यवसायों में अपने.अपने कुम्भकार, बुनकर, कलाल, लोहार, बनिया, जौहरी में ईश्वर का रूप देखा है। यह सभी शिल्प समाज में निम्न जाति से सम्बन्धित थे। इनकी व्यवसायिक पद्धति को उन्होंने निकट से देखा था। इनके माध्यम से वे गूढ़ से गूढ़ तत्वज्ञान को व्यक्त किया है। रूपकों ने उनकी आध्यात्मिकता जैसे विषय को जन साधारण के लिए सहज कर दिया। अनुभूति की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति रूपकों द्वारा ही अधिक प्रभावशाली ढ़ंग से हो सकती है। संत कवि रज्जब जी ने इस तथ्य को सिद्ध किया। उनके पूर्व रूपकों का जनजीवन में बहुत कम स्थान था। भारत की निम्नवर्गीय जनता से उसका सम्बन्ध नहीं के बराबर था। संत कवि रज्जब मिट्टी के गायक थे। इन्होंने निम्नतम भारतीय समाज की जीवनानुभूतियों को आत्मसात करके काव्य में स्थान प्रदान किया।

उपरोक्त विवेचन के विशद् विश्लेषण का सारांश यह है कि समाज के सभी अन्दरूनी हलाको में उनकी गहरी पैठ थी। उनकी दृष्टि इसीलिए लोक के भीतर से होती हुई उसे बंधकर उसके मूल अर्थात परमार्थ तक जाती हुई काव्य रचना का समस्त ढाँचा तैयार करती है। जो आज भी लोक व समाज के लिए अनुकरणीय एवं कल्याणकारी है।

संदर्भ-

1. टीकाकार-संत कवि कविरत्न स्वामी नारायणदास, श्री रज्जब वाणी, प्रकाशक-नारायण सिंह शेखावत, अजमेर, 1967 ई., पृ. 42
2. (सं.) डा. ब्रजलाल वर्मा, रज्जब बानी, उपमा प्रकाशन, प्रा. लि., कानपुर, प्र.सं. 10 दिसम्बर, 1963, पृ. 251
3. श्री रज्जब वाणी, पृ. 246
4. रज्जब बानी, पृ. 413
5. वही, पृ. 19
6. रज्जब बानी, पृ 157
7. वही, पृ. 248
8. वही, पृ. 239
9. वही, पृ. 19
10. श्री रज्जब वाणी, पृ. 206
11. रज्जब बानी, पृ. 19
12. वही....
13. रज्जब बानी, पृ. 187
14. वही, पृ. 101
15. वही, पृ. 102
16. वही, पृ. 126
17. वही, पृ. 112
18. वही, पृ. 228
19. श्री रज्जब वाणी, पृ. 1062